इकाई 17 औद्योगिक विकास में राज्य की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 प्रारम्भिक परस्पर-विरोधी विचार
  17.2.1 दो चरम विचार
  17.2.2 मुख्य धारा विचार
17.3 औद्योगिक नीति के आधार
  17.3.1 आयात प्रतिस्थापन तथा नियंत्रण
  17.3.2 विदेशी पूँजी
17.4 औद्योगिक नीति प्रस्ताव
  17.4.1 औद्योगिकी नीति का उद्देश्य
  17.4.2 उद्योगों का वर्गीकरण
  17.4.3 औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956
  17.4.4 लाइसेंसीकरण प्रणाली
17.5 औद्योगिक नीति प्रस्ताव-1956 : एक मूल्यांकन
  17.5.1 मूल्यांकन का मानदंड
  17.5.2 नियंत्रणों का मूल्यांकन
17.6 उदारीकरण की ओर
  17.6.1 औद्योगिक लाइसेंसीकरण नीति, 1970
  17.6.2 औद्योगिक नीति, 1977
  17.6.3 उदारीकरण नीति, 1980
  17.6.4 उदारीकरण उपाय, 1985
17.7 नई औद्योगिक नीति, 1991
  17.7.1 औद्योगिक लाइसेंसीकरण
  17.7.2 विदेशी निवेश
  17.7.3 विदेशी प्रौद्योगिकी समझौते
  17.7.4 सार्वजनिक क्षेत्र
  17.7.5 MRTP अधिनियम
17.8 नई औद्योगिक नीति की समीक्षा
17.9 सारांश
17.10 शब्दावली
17.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
17.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप निम्नलिखित कर सकेंगे :

- जान सकेंगे कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय हमारा औद्योगिक ढाँचा क्या था और अर्थव्यवस्था के औद्योगीकरण के लिए हमने क्या नीति अपनाई;
- विभिन्न औद्योगिक प्रस्तावों और उनमें प्राथमिकताओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- अर्थव्यवस्था के औद्योगीकरण की प्रक्रिया में अपनाई गई लाइसेंसीकरण नीति की व्याख्या कर सकेंगे;

- अपनाए गए उदारीकरण के कार्यक्रम को समझ सकेंगे;
- उदारीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण करने में समर्थ होंगे; तथा
- विदेशी निवेश व विदेशी प्रौद्योगिकी के संदर्भ में, नीति परिवर्तनों की समीक्षा कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

खंड 1 में हम यह देख चुके हैं कि, प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व, भारत में बहुविकसित सूती कपड़े और पटसन वस्त्रों के उद्योग थे। इसके अतिरिक्त अंतर-युद्ध अवधि (inter-war period) में इस्पात, चीनी, सीमेंट, माचिस, वनस्पति, साबुन तथा इंजीनियरी की अनेक शाखाएँ जैसे अनेक उद्योग स्थापित किये गए थे। लेकिन इतना काफी नहीं था। वास्तव में बड़े उद्योगों के क्षेत्र का महत्व तो इस बात से ही पता चलता है कि 1948-49 में देश की कुल कार्यकारी जनसंख्या का केवल 6.5 प्रतिशत ही कारखानों में काम कर रहा था। औद्योगिक ढाँचे में प्रमुख कमी यह थी कि यह असंतुलित था, क्योंकि यह केवल उपभोक्ता वस्तुओं पर आधारित था। कुछ अपवादों को छोड़ कर इनका स्वामित्व निजी क्षेत्र के पास था। सूती कपड़ा उद्योगों को छोड़ अधिकतर उद्योगों का नियंत्रण विदेशी था। जो कुछ भी विकास हुआ उसका आधार दीर्घकालीन कार्यक्षमता न होकर लाभकर स्थान (location), बाजार का आकार, कच्चे माल की उपलब्धता, उपयुक्तता (जो कि अधिकतर सुरक्षित बाजार एवं युद्ध की आवश्यकताओं के कारण थी) थे।

यह तो हम पहले जान चुके हैं कि आजादी से पहले की उपनिवेशी सरकार की उद्योग व कृषि दोनों के ही विकास में रुचि नहीं थी, क्योंकि उसके हित भारतीय जनता के हित से मेल नहीं खाते थे। लेकिन आजादी के बाद की नयी सरकार को गरीबी का दुश्चक्र तोड़ने, औद्योगीकरण के लिए वातावरण तैयार करने और आर्थिक विकास करने का मौका मिला। प्रश्न यह था : विकास के बारे में उपनिवेशी विचारों की प्रधानता कैसे त्यागें और राष्ट्रीय आंदोलन की अपेक्षाओं को कैसे पूरा करें। इस इकाई में हम इन उद्देश्यों को पूरा करने हेतु औद्योगिक नीति, विनियमन तथा नियंत्रणों, आदि, उपायों पर विचार करेंगे।

17.2 प्रारम्भिक परस्पर-विरोधी विचार

1950 के दशक में इस बात पर बहुत बहस हुई थी कि आर्थिक विकास की ऋणनीति क्या हो। गरीबी के दुष्चक्र को कैसे तोड़ा जाए। उस समय इस पर बहुत से विचार व्यक्त किये गए थे।

17.2.1 दो चरम विचार

एक विचार मुक्त उद्यम विचारधारा का था। इसके अनुसार सभी आर्थिक गतिविधियाँ निजी क्षेत्र तथा बाजार शक्तियों पर छोड़ देनी चाहिए। यह विचार कुछ एक उद्योगपतियों व अर्थशास्त्रियों का था।

इसके विपरीत बहुत से लोगों का विश्वास था कि आज़ादी से पूर्व भारत के अल्पविकास के पीछे कारण यह था कि सरकार ने औद्योगीकरण को बढ़ावा नहीं दिया और सारे घरेलू उद्यमों को बाजार शक्तियों पर छोड़ दिया था, जिससे कि उनका विकास नहीं हुआ। अतः आर्थिक विस्तार हेतु उचित वातावरण तैयार करने के लिए आर्थिक कार्यों में सरकार की सक्रिय भूमिका की आवश्यकता थी। ऐसा दो कारणों से आवश्यक था :

1) सड़क, बिजली, संचार आदि, जैसी बुनियादी सुविधाओं को विकसित करना, तथा
2) औद्योगिक क्षेत्र के असंतुलन को दूर करने हेतु मशीन विनिर्माण क्षेत्र को स्थापित करना।

कई अन्य कारणों से भी केवल बाजार शक्तियों पर भरोसा रखना ठीक नहीं समझा गया था। ऐसा विचार था कि इन शक्तियों पर भरोसा करने से औद्योगीकरण की प्रक्रिया में देरी होगी, जैसा कि इग्लैंड और पश्चिम यूरोप में हुआ। न ही भारतीय उद्योगपति और न ही भारतीय लोग विकास को बाजार शक्तियों पर छोड़ कर एक शताब्दी या इससे अधिक तक प्रतीक्षा करना चाहते थे। रूस और जापान के आर्थिक विकास के अनुभव सामने थे जिससे यह पता चलता था कि यदि राज्य द्वारा विनियमित व नियोजित आर्थिक कार्य सही ढंग से हो, तो एक शताब्दी की विकास प्रक्रिया को 30-40 वर्षों में प्राप्त किया जा सकता है। इन सभी कारणों से मुक्त उद्यम विचारधारा अल्पमत में रह गई थी।

एक दूसरा चरम विचार यह था सम्पत्ति संबंधों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए जाएँ, यानि सभी सम्पत्तियाँ, ग्रामीण व शहरी, कृषि में व उद्योग में, राज्य और समाज को हस्तांरित कर दी जाएँ, जैसा कि एक समाजवादी देश में होता है। इस विचार को भी त्याग दिया गया क्योंकि इसको आवश्यक समर्थन नहीं मिला।

17.2.2 मुख्य धारा विचार

चरम विचारधाराओं से अलग, तीन अन्य विचार थे : (i) गाँधीवादी विचार लघु उद्योगों और आत्म निर्भरता के पक्ष में था, (ii) राष्ट्रवादी उद्योगपतियों का विचार था कि बड़े उद्योगों के माध्यम से तेजी से औद्योगिकीकरण हो और विदेशी प्रतियोगिता से संरक्षण मिले; (iii) नेहरू और उनके जैसे सामाजिक लोकतंत्रवादियों का विचार था कि सार्वजनिक क्षेत्र के अधीन पूँजीगत वस्तु उद्योगों के माध्यम से तेजी से औद्योगीकरण हो, और साथ-साथ लघु और कुटीर क्षेत्र के समर्थन की भी व्यवस्था हो। बड़े उद्योगों और छोटे उद्योगों पर केंद्रित इन विचारों में विभिन्नता के पीछे रोज़गार और तेजी से विकास के बीच चुनाव करना था। गाँधीवादियों का तर्क था कि बड़े उद्योगों की अपेक्षा छोटे उद्योगों से अधिक रोजगार मिलेगा। सामाजिक लोकतंत्रवादियों ने यह कहकर आलोचना की कि इससे विकास की गति धीमी रहेगी। अंततः फैसला पूँजी वस्तुओं पर आधारित औद्योगीकरण के पक्ष में हुआ जिसमें लघुस्तर और कुटीर उद्योगों के विकास की भी व्यवस्था थी। इस बात पर जोर दिया गया कि पूँजीगत वस्तुओं (मशीन विनिर्माण) के क्षेत्र के उचित विकास के बिना विकास की कोई भी रणनीति सफल नहीं हो पाएगी, चाहे यह लघु उद्योगों या फिर बड़े उद्योगों पर आधारित हो।

इस विचार को प्रोफेसर महालनोबिस (Mahalanobis) का भी समर्थन मिला कि अर्थव्यवस्था की संवृद्धि दर का सीधा संबंध पूँजीगत वस्तुओं के क्षेत्र में लगे विनियोग अनुपात से है। जितना अधिक यह अनुपात होगा उतनी अधिक संवृद्धि की दर होगी।

जब यह तय हो गया कि औद्योगिक ढाँचा पूँजीगत वस्तुओं के पक्ष में होगा, तो प्रश्न यह उठा कि यह कौन करेगा? सरकार या निजी उद्योगपति? इसका निर्णय वित्त उपलब्धता के आधार पर होना था। उस समय निजी क्षेत्र के पास न तो तकनीकी जानकारी थी और न ही वित्तीय साधन।

अतः यह आवश्यक समझा गया कि अगर तीव्र विकास के उद्देश्य को पाना है, तो आधारभूत व सामरिक महत्त्व के सभी उद्योग, व सार्वजनिक उपयोगिता की सेवाएँ सार्वजनिक क्षेत्र में

होगी। अन्य आवश्यक उद्योग, जिनमें बहुत अधिक धन की आवश्यकता थी, भी सार्वजनिक क्षेत्र में होंगे। अन्य सभी उद्योगों का विकास निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया।

इस प्रकार बहुत से उद्योगों के विकास की जिम्मेदारी सरकार को लेनी थी। सरकार ने इस हेतु आयोजन का सहारा लिया। इसके स्वरूप की व्याख्या इकाई–7 में की गई है। यहाँ इतना जानना आवश्यक है कि भारत ने केंद्रीय आयोजन एक मिश्रित अर्थव्यवस्था के लिए अपनाया, जिसमें निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों को विकास में पूरक भूमिकाएँ निभानी थी। इस बारे में रणनीति निम्नलिखित खंडों में बताई गई है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित में से कौन सा वक्तव्य सही है, कौन सा गलत?

   i) स्वतंत्रता पूर्व के भारत के औद्योगिक ढाँचे की मुख्य विशेषता पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों का विकास था। ( )

   ii) भारत में उपनिवेशी सरकार कृषि या उद्योग के विकास में रुचि नहीं रखती थी। ( )

   iii) सामाजिक लोकतंत्रवादी लघु उद्योगों के विकास और आत्मनिर्भरता के पक्ष में थे। ( )

   iv) महालनोबिस के अनुसार, "अर्थव्यवस्था की संवृद्धि दर का सीधा संबंध पूंजीगत वस्तुओं के क्षेत्र में लगे विनियोग अनुपात से था"। ( )

2) औद्योगीकरण को बढ़ावा देने हेतु सरकारी हस्तक्षेप क्यों आवश्यक था? दो वाक्यों में उत्तर दीजिए।

   .....

   .....

   .....

3) विकास के बारे में नेहरू और गाँधी के विचारधाराओं के बीच अंतर की व्याख्या कीजिए (तीन वाक्यों में)।

   .....

   .....

   .....

17.3 औद्योगिक नीति के आधार

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में निवेश सीधे प्रत्यक्ष आयोजन द्वारा होना था। निजी क्षेत्र में निवेश सरकारी भौतिक नियंत्रण के आधार पर होना था। ये नियंत्रण व्यापक लाइसेंसीकरण प्रणाली और योजना आयोग द्वारा निर्धारित लक्ष्यों के रूप में थे। इस प्रणाली से दो बातें निर्धारित होनी थी : (i) उत्पाद स्तर तक निवेश ढाँचा, तथा (ii) प्रौद्योगिकी, पैमाने, विस्तार,

स्थान, आयातित तत्त्व (import content), वित्त एवं जानकारी में विदेशी सहयोग का चुनाव।

17.3.1 आयात प्रतिस्थापन तथा नियंत्रण

आयात प्रतिस्थापन का आधार दो महत्त्वपूर्ण कारक थे। एक निराशाजनक निर्यात तथा दूसरे, घरेलू प्रारम्भिक उद्योगों को संरक्षण की आवश्यकता।

इनमें से प्रमुख विकास के दौरान प्रारम्भिक उद्योगों को संरक्षण देने की आवश्यकता थी। इस रणनीति के अधीन ऊँचे प्रशुल्क (tariff) एवं कोटा प्रतिबंधों (quota restrictions) द्वारा प्रारम्भिक उद्योगों को आयातों से प्रतिस्पर्धा से संरक्षण देना था।

इस रणनीति में यह भी निहित था कि जैसे-जैसे ये प्रारम्भिक उद्योग विकसित हो जाते हैं, यह संरक्षण हटा लिया जाएगा और उद्योग अंतरराष्ट्रीय बाजारों में स्पर्धा कर पाएँगे और आयात आय में वृद्धि होगी। इसके पीछे औचित्य यह था कि अल्पकाल में तो कुछ लागत चुकानी पड़ेगी, लेकिन दीर्घकाल में एक गतिशील औद्योगिक क्षेत्र की बढ़ती हुई घरेलू माँग को पूरा करने में सक्षम होगा। यह आत्मनिर्भरता की दिशा में एक कदम था। लेकिन महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि आयात प्रतिस्थापन कहाँ तक और कितनी कुशलता से प्राप्त किया जा सकता था।

भौतिक नियंत्रण औद्योगिक लाइसेंसीकरण व आयात लाइसेंसीकरण तक ही सीमित नहीं थे। कई विनिर्मित व अर्धविनिर्मित वस्तुओं के मूल्यों एवं वितरण पर भी नियंत्रण लगाए गए थे। इसके पीछे ये उद्देश्य थे :

i) प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को उचित दरों पर उपयुक्त आबंटन (allocation) सुनिश्चित करना;

ii) आधारभूत वस्तुओं, जिनका व्यापक अग्रानुबंधन (forward linkage) है अर्थात् जिनका प्रयोग अनेक वस्तुओं के बनाने में होता है, कीमत वृद्धि के कारण होने वाले स्फीतिकारी प्रभावों को रोकना, तथा समाज के आर्थिक तौर पर कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा करना; और

iii) समानता का विचार

17.3.2 विदेशी पूँजी

औद्योगिक रणनीति में विदेशी निवेश और प्रौद्योगिकी के आयात के बारे में भी एक नीतिगत वक्तव्य था। विदेशी पूँजी के बारे में सरकार का दृष्टिकोण 1949 में लोकसभा में प्रधानमंत्री नेहरू द्वारा दिए गए नीतिगत वक्तव्य से तय होना था। भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिकीकरण तेज करने के लिए सरकार ने विदेशी पूँजी और उद्यम की भागीदारी, विशेषतया औद्योगिक तकनीक और जानकारी के बारे में, प्राप्त करने की आवश्यकता को समझा। वक्तव्य में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि स्वामित्व में प्रमुख भागीदारी और प्रभावी नियंत्रण भारतीयों के हाथ में होगा। नीति यह थी कि फीस या रायल्टी देकर प्रौद्योगिकी को सीधे ही खरीद लिया जाए न कि यह विदेशी निवेश के रूप में आए।

17.4 औद्योगिक नीति प्रस्ताव

भारत में औद्योगिक नीति के व्यापक उद्देश्य 1948, 1956 व 1973 के औद्योगिक नीति प्रस्तावों तथा 1975, 1980, 1985-86 व 1991 के औद्योगिक नीति वक्तव्यों में स्पष्ट किए गए

हैं। औद्योगिक नीति के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

17.4.1 औद्योगिक नीति का उद्देश्य

i) योजना की प्राथमिकताओं एवं लक्ष्यों के अनुसार औद्योगिक निवेश और उत्पादन का विकास एवं विनियमन;

ii) उद्योगों में स्वामित्व के केंद्रीयकरण को रोकना;

iii) छोटे और कुटीर उद्योगों का संरक्षण और बढ़ावा;

iv) विदेशी निवेश को सीमित करना और नियंत्रण करना;

v) विकास के स्तरों में असमानता घटाने हेतु देश के विभिन्न क्षेत्रों का संतुलित आर्थिक विकास;

vi) आयात प्रतिस्थापन पर आधारित औद्योगिक नीतियों के माध्यम से आत्मनिर्भरता प्राप्त करना; और

vii) विकास प्रक्रिया में सार्वजनिक क्षेत्र को केंद्रीय भूमिका देना।

उत्पादन लक्ष्य प्राप्त करने हेतु औद्योगिक निवेश का नियमन करना व एकाधिकारिक प्रवृत्तियों को रोका जाना था ताकि घरेलू कारीगरों एवं स्थानीय विशेषज्ञता को बढ़ावा मिले, और छोटे और कुटीर उद्योगों को संरक्षण मिले। विदेशी निवेश को नियंत्रित कर एक सीमा में रखा गया ताकि घरेलू उद्योग फले-फूलें। इसी तरह असंतुलित विकास कम करने के लिए, संतुलित विकास की नीति अपनाना एक और उद्देश्य था। आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए, आयात प्रतिस्थापन की नीति अपनायी गयी और सार्वजनिक क्षेत्र के माध्यम से विकास में राज्य को महत्त्वपूर्ण भूमिका दी गई।

7.4.2 उद्योगों का वर्गीकरण

)48 की औद्योगिक नीति में विकास की गति तेज करने हेतु एक मिश्रित अर्थव्यवस्था की ीव रखने पर बल दिया गया जिसमें निजी एवं सार्वजनिक उद्यम एक साथ काम करेंगे। उद्योगों को चार वर्गों में बाँटा गया :

i) सरकार का एकमात्र एकाधिकार : हथियार व गोला बारुद, रेलवे, परमाणु ऊर्जा, परिवहन।

ii) नए उद्योग जिनमें नया निवेश केवल राज्य करेगा : जैसे कोयला, इस्पात, लोहा, वायुयान विनिर्माण, पोत निर्माण, टेलीफोन, तार व बेतार उपकरण का विनिर्माण।

iii) आधारभूत महत्त्व के उद्योग जिनके बारे में सरकार योजना बनाएगी और इनका नियमन करेगी : जैसे नमक, स्वचालित वाहन, मशीनी औजार, रसायन, अलोह धातु, सीमेंट, चीनी, कागज आदि।

iv) शेष सभी उद्योग निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिए गए।

मिश्रित अर्थव्यवस्था का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951 पास किया गया। इसके अनुसार, (i) अनुसूचित उद्योगों में वर्तमान उपक्रमों का पंजीकरण कराना आवश्यक , तथा (ii) केन्द्रीय सरकार से लाइसेंस प्राप्त किए बिना न तो नए उपक्रम खुल सकते थे और न ही वर्तमान उपक्रमों का विस्तार हो सकता था।

1948 का औद्योगिक नीति प्रस्ताव अपनान क बाद भारत में काफी महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ हुई। आयोजन प्रारम्भ हुआ और प्रथम पंच वर्षीय योजना 1951 में प्रारम्भ हुई। संसद ने 1955 में समाजवादी ढाँचे को अपनाया। इसके कारण औद्योगिक नीति में कुछ परिवर्तन की आवश्यकता हुई। अंततः अप्रैल 1956 में दूसरा औद्योगिक नीति प्रस्ताव अपनाया गया।

17.4.3 औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956

इस प्रस्ताव में उद्योगों को तीन वर्गों में बाँटा गया और प्रत्येक वर्ग में राज्य की भूमिका स्पष्ट की गई।

i) वे उद्योग जिनके भविष्य में विकास की पूर्ण जिम्मेदारी राज्य पर होगी।

ii) वे उद्योग जो अधिकतर राज्य के स्वामित्व में होंगे और जिनमें नए उपक्रम खोलने में सरकार पहल करेगी, लेकिन निजी क्षेत्र से भी पूरक भूमिका निभाने की आशा है।

iii) बाकी सभी उद्योग जिनके, विकास और उनके खोलने में पहल करने की जिम्मेदारी निजी क्षेत्र की रहेगी।

ये वर्ग कठोर नहीं थे। उदाहरण के तौर पर प्रथम वर्ग में निजी क्षेत्र को पूरी तरह बाहर नहीं रखा गया था। सरकार राष्ट्रीय हित में नई इकाइयाँ खोलने में निजी क्षेत्र का सहयोग लेने में स्वतंत्र थी। लेकिन साथ-साथ यह भी व्यवस्था थी कि पूँजी में प्रमुख भागीदारी सरकार की ही रहेगी ताकि इनकी नीतियों और कार्यों पर सरकार का नियंत्रण ही रहे। दूसरा वर्ग एक मिश्रित वर्ग था जिसको आगे बढ़ाने की जिम्मेदारी सरकार की थी, लेकिन निजी क्षेत्र अपने तौर पर या फिर राज्य के सहयोग से इसमें योगदान देने के लिए स्वतंत्र था। शेष सभी उद्योगों, जिनके विकास के लिए सामान्यतः पहल निजी क्षेत्र को करना था, लेकिन सरकार इनमें भी कोई उद्योग खोलने के लिए स्वतंत्र थी।

17.4.4 लाइसेंसीकरण प्रणाली

सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच विभाजन लाइसेंसीकरण प्रणाली के माध्यम से करना था। किसी भी उद्यम को किसी नई वस्तु का उत्पादन शुरू करने से पहले, या क्षमता में वृद्धि से पहले, सरकार से लाइसेंस प्राप्त करना आवश्यक था। इसके लिए दिए गए आवेदन की जाँच तकनीकी-आर्थिक दृष्टिकोण से तकनीकी विकास महानिदेशालय करता था। यह जाँच करता था कि उद्योग में वर्तमान क्षमता काफी है या नहीं, मशीनों, कच्चेमाल व तकनीकी जानकारी के आयात की आवश्यकता होगी या नहीं, और क्या यह आयोजन की प्राथमिकताओं के अनुसार है या नहीं। अच्छी तरह जाँच करने के बाद 1951 के उद्योग अधिनियम की रूपरेखा के अनुसार कार्य करने वाली एक लाइसेंसीकरण कमेटी (अंतः अनुसचिवीय), जिसको 1952 में स्थापित किया गया था, इसको पास करती थी।

इसके अलावा भावी निवेशक को और बहुत से नियंत्रणों से गुजरना पड़ता था। पूँजीगत वस्तु लाइसेंसीकरण कमेटी से लाइसेंस प्राप्त करना पड़ता था। यह कमेटी आयात लाइसेंस देती थी। और यदि कोई विदेशी सहयोग लेना होता था तो विदेशी समझौता कमेटी से सहमति आवश्यक थी।

इस औद्योगिक नीति प्रस्ताव में छोटे पैमाने के उद्योगों की समस्या के बारे में भी कहा गया था। इन उद्योगों के कुछ लाभ होते हैं। ये तुरंत रोजगार दिलाते हैं। राष्ट्रीय आय का अधिक समान वितरण करने में सहायक होते हैं। ऐसी पूँजी और कौशल प्राप्त करवाने में सहायक

होते हैं, जो कि लघु उद्योग न हाने पर प्रभावहीन हो जाता। इसमें सरकार की भूमिका यह थी कि इन उद्योगों के आधुनिकीकरण में सहायता करे और इनके प्रबंध ढाँचे में सुधार लाए।

17.5 औद्योगिक नीति प्रस्ताव -1956 : एक मूल्यांकन

इस प्रस्ताव के संदर्भ में प्रथम तीन योजना अवधियों में औद्योगीकरण प्रक्रिया, कीमत व वितरण नियंत्रण व व्यापार नीति की समीक्षा पहली बार भगवती व देसाई (1970) ने की। इस बारे में उन्होंने सूचना भारत सरकार की विभिन्न समितियों की रिपोर्टों से प्राप्त की। वे अधिकतर हजारी समिति (1967) की औद्योगिक आयोजन एवं लाइसेंसीकरण नीति पर रिपोर्टों, एकाधिकार जाँच कमीशन (1964), अनुमान समिति (1967-68) की औद्योगिक लाइसेंसीकरण पर नवीं रिपोर्ट, तकनीकी विकास महानिदेशालय पर माथुर अध्ययन दल (1965), तथा स्वामीनाथन समिति की दो रिपोर्ट (1964 व 1966), पर निर्भर रहे। उन्होंने औद्योगिक आयोजन की दृष्टिकोण से (i) लाइसेंसीकरण प्रणालियों की आर्थिक कुशलता, (ii) पंचवर्षीय योजनाओं में निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा लक्ष्य निर्धारित करने की विधियाँ, तथा (iii) कीमत व वितरण नियंत्रणों की जाँच की।

17.5.1 मूल्यांकन का मानदंड

औद्योगिक आयोजन हेतु लाइसेंसीकरण प्रणालियों की आर्थिक कुशलता की जाँच इन आधार पर की :

i) मशीनों के वास्तविक चुनाव में अपनाया गया मानदंड।

ii) इन प्रश्नों पर किसी फैसले पर पहुँचने के लिए तकनीकी विकास महानिदेशालय द्वारा इकट्ठी की गई सूचना।

iii) लक्ष्य पूरा करने हेतु प्रार्थना-पत्रों के चुनाव में लाइसेंसीकरण समिति द्वारा अपनाई गई कार्यविधि।

iv) प्रार्थना-पत्र मंजूर करने में लिया गया समय।

v) औद्योगिक स्वामित्व के केंद्रीयकरण को रोकने और प्रतियोगी प्रणाली को बढ़ावा देने में लाइसेंसीकरण और विनियमन प्रणाली की भूमिका।

विश्लेषण से पता चलता है कि स्थिति काफी असंतोषजनक थी। तीनों योजनाओं की पूरी अवधि में लक्ष्य निर्धारण का आधार कमजोर था, लेकिन विस्तृत और व्यापक था। लाइसेंसीकरण बहुत गंभीरता से लिया गया, विशेषतया क्षमता पर नियंत्रण रखने के लिए। लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए लाइसेंसीकरण कार्यविधियों में काफी कमियाँ पाई गई। अनुवर्ती कार्यवाही कमजोर थी। प्रार्थियों के लिए कुशलता के चुनाव का मापदंड की परिभाषा स्पष्ट नहीं थी। लायसेंसीकरण कार्यविधियाँ कुछ इस प्रकार बनी थी कि इनमें इन चुनावों का ध्यान नहीं रखा जाता था। संतुलित क्षेत्रीय विकास तथा स्वामित्व के केंद्रीयकरण को रोकने जैसे उद्देश्यों पर बल तो दिया जाता था, लेकिन न्यूनतम आर्थिक लागत पर इन्हें प्राप्त करने की कोई कार्यविधियाँ नहीं बनायी गयी थी। कई बार तो कार्यविधि इस उद्देश्य को प्राप्त करने में बाधक थी। बड़े औद्योगिक घराने अपना प्रभाव प्रयोग में लाकर लायसेंस प्राप्त कर लेते थे। बड़े व्यावसायिक समूहों का अधिक विकास, पहले से ही प्राप्त अधिकृत क्षमता के कारण, छोटे व मध्यम दर्जे के उद्यमों के विकास में रुकावट था।

17.5.2 नियंत्रणों का मानदंड

प्रमुख कानूनी प्रावधान जिनके अधीन सरकार कार्य करती थी, ये थे : (i) आवश्यक वस्तु

अधिनियम, (ii) उद्योग (विकास व नियमन) अधिनियम। इसके अलावा अनौपचारिक मूल्य नियंत्रण भी होते थे। 1970 तक की सारी अवधि में कई वस्तुओं के मूल्य और वितरण पर नियंत्रण थे। ये मुख्यतः इन वस्तुओं पर थे : लोहा, इस्पात, अलोह धातु, कोयला, खाद, कार्बन, सूती कपड़ा, कागज़, चीनी, मोटर कार, स्कूटर, व्यावसायिक वाहन, शराब, शीरा, सीमेंट, दवाईयाँ, मिट्टी का तेल व अन्य पेट्रोल पदार्थ, साईकलें, टायर, ट्यूब, प्राकृतिक रबर, वनस्पति, साबुन व माचिस। इन सभी मदों पर सभी समय एक साथ नियंत्रण नहीं थे, न ही सभी पर कीमत और वितरण दोनों प्रकार के नियंत्रण एक साथ थे; काफी मदों पर केवल मूल्य नियंत्रण थे।

विस्तृत समीक्षा से पता चला कि ये नियंत्रण अविवेचित थे। भगवती व देसाई का तर्क था कि बिना प्रत्यक्ष कुशलता की जाँच किए और बिना कोई इनके विकल्प ढूँढे, ये नियंत्रण प्रत्यक्ष दखल के रूप में सामान्य आर्थिक दर्शन के परिणाम थे।

प्रशासनिक प्रक्रिया के माध्यम से कार्य करने वाली इन नीतियों के क्षुब्ध करने वाले आर्थिक परिणाम निकले। बड़े औद्योगिक घराने अपने प्रभावों का इस्तेमाल कर नई इकाई लगाने और वर्तमान क्षमता बढ़ाने के लायसेंस प्राप्त कर लेते थे।

इससे व्यक्तिगत उद्योगों में प्रवेश करने में रुकावटें आईं। इसके कारण घरेलू प्रतियोगिता की संभावना कम हुई और साथ-साथ उद्योगों के प्रादेशिक फैलाव की संभावनाएँ भी कम हुई। भौतिक नियंत्रणों से लायसेंस देने में लचीलापन घटा। ऐसी परियोजनाएँ इस तरह से पास की गईं कि परियोजना लागत और उत्पादन लागत बढ़ी। विदेशी प्रतियोगिता न होने से और भारतीय उद्योग को निरंतर संरक्षण देने से निर्यात पर बुरा असर पड़ा और अकुशलता को बढ़ावा मिला।

इसके अतिरिक्त, छोटे पैमाने की इकाइयों के बारे में यह सोचना कि इनमें कम पूँजी लगती है और ये प्रति पूँजी इकाई अधिक रोजगार देते हैं, भी सही साबित नहीं हुआ। 1960 के दशक में किए गए अध्ययनों से पता चला कि पैमाने और पूँजी या श्रम गहनता में कोई निर्णायक सहचर्य नहीं है। और, अलाभकर व अव्यवहार्य इकाइयों को बंद करने की आज्ञा न देकर इन ठीक न होने वाली बीमार इकाइयों को संभालने की जिम्मेदारी भी सरकार पर आ पड़ी। उद्यमी (entrepreneurs) बिना किसी वित्तीय जोखिम के इनसे बच गये। अंत में, औद्योगिक नीतियों और कार्यविधियों में निहित लायसेंस संबंधी अनिश्चितताओं से उद्यमी दीर्घकालीन योजना बनाने में निरुत्साहित हुए।

17.6 उदारीकरण की ओर

1970 के दशक की औद्योगिक नीति घरेलू और विदेशी दोनों प्रकार के उद्यमों में कठोर लायसेंसीकरण प्रणाली से परे हटने लगी। भगवती व देसाई के अनुसार यह परिवर्तन 1 जून 1966 के आसपास होना प्रारम्भ हुआ जब भारतीय रुपये का अवमूल्यन हुआ। औद्योगिक नीति में दिशा परिवर्तन 1970 में पहली बार सामने आया जब औद्योगिक लायसेंसीकरण पर दत्त समिति रिपोर्ट (1969) की सिफारिशों के आधार पर एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, (MRTP Act) जो कि 1969 में पास किया गया और 1 जून 1970 से लागू किया गया। इसमें बड़े औद्योगिक घरानों के विस्तार पर रोक लगाने की बात थी। यह रोक 20 करोड़ रु. से अधिक के सकल परिसम्पत्तियों वाले जुड़े हुए (interlinked) उपक्रमों पर, या एक करोड़ रु. से ऊपर वाले प्रमुख (dominant) उपक्रमों पर लागू होनी थी।

17.6.1 औद्योगिक लायसेंसीकरण नीति, 1970

इस नीति में उस समय की औद्योगिक प्राथमिकताओं और लक्ष्यों को ध्यान में रख 1956 के

औद्योगिक प्रस्ताव के अनुसूचित उद्योगों को तीन वर्गों में दुबारा बाँटा गया। ऐसा ही कुछ 1973 के औद्योगिक नीति वक्तव्य में किया गया। इस वक्तव्य में उद्योगों को 6 वर्गों में बाँटा गया : महत्त्वपूर्ण (Core) क्षे सार्वजनिक क्षेत्र, दोहरे कार्यक्षेत्र (dual coverage), छोटा तथा मध्यम क्षेत्र, विदेशी क्षेत्र और संयुक्त (joint) क्षेत्र।

महत्त्वपूर्ण क्षेत्र (Core Sector)

ये राष्ट्रीय आर्थिक विकास के आधार हैं। इनका सीधा संबंध महत्त्वपूर्ण उद्योगों से होता है। इनमें निर्यात की काफी संभावना होती है।

सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector)

इसमें 1956 की औद्योगिक नीति प्रस्ताव की तालिका में दिए गए उद्योग हैं जो सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित है।

दोहरे कार्यक्षेत्र (Dual coverage)

महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के इस शेष भाग में वे सभी बड़े औद्योगिक घराने (प्रत्येक की परिसम्पत्तियाँ 20 करोड़ रु. से अधिक) आते हैं जो लायसेंस क्षमता के लिए आवेदन दे सकते हैं।

लघु एवं मध्यम क्षेत्र

इस क्षेत्र में आरक्षण की व्यवस्था की गई थी। इसके पीछे उद्देश्य था बड़े औद्योगिक घरानों की इसमें घुसपैठ रोकना। इस क्षेत्र में सहकारिता को, विशेषतया आम उपभोग वस्तुओं में, भी प्रोत्साहन देना था।

विदेशी कंपनियाँ

विदेशी उपक्रम, उनकी सहायक कंपनियाँ तथा विदेशी कम्पनियों की भारतीय शाखाएँ अब लायसेंस क्षमता के लिए आवेदन कर सकती थीं।

संयुक्त क्षेत्र (Joint Sector)

एक मध्यवर्ती क्षेत्र, यानि संयुक्त क्षेत्र, के विकास के लिए केंद्रीय तथा राज्य सरकारें स्वयं निजी क्षेत्र से सहयोग की बात करेंगी।

सभी क्षेत्रों से साधन आकर्षित करने की इस प्रक्रिया को 1975 की लायसेंसीकरण नीति में और बल मिला। इस नीति में महत्त्वपूर्ण छूटें दी गईं थीं। ये छूटें लायसेंसीकरण समाप्त करने और निर्यात करने वाले 21 उद्योगों को असीमित विस्तार के रूप में थी। यह छूट एकाधिकार घरानों सहित बड़े औद्योगिक घरानों व बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों दोनों के लिए थी।

17.6.2 औद्योगिक नीति, 1977

1977 में केंद्र में सरकार बदलने से एक नई औद्योगिक नीति बनी जिसमें पिछली औद्योगिक नीतियों की समीक्षा की गई। ऐसा महसूस किया गया कि पिछली नीतियों के साथ-साथ, (i) बेरोजगारी बढ़ी, (ii) ग्रामीण-शहरी अंतर बढ़ा, (iii) औद्योगिक रुग्णता (sickness) एक राष्ट्रव्यापी बीमारी हो गई, (iv) वास्तविक औद्योगिक विकास और समग्र औद्योगिक निवेश रुके हुए से थे। कुल और छिपी बेरोजगारी के बीच अंतर समाप्त करने के लिए और अर्थव्यवस्था के विकास में असंतुलन ठीक करने के लिए, 1977 की औद्योगिक नीति में

कुटीर तथा लघु उद्योगों को महत्वपूर्ण स्थान मिला। इनके विकास के लिए ये उपाय किए गए :

क) उत्पादन में आरक्षण,

ख) बड़े पैमाने की क्षमता विस्तार नहीं,

ग) बड़े पैमाने के उद्योगों पर प्रतिबंध

घ) सेवाएँ और सहायता प्रदान करने के लिए जिला स्तर जिला उद्योग केंद्र की स्थापना।

लघु क्षेत्र में आरक्षित मदों की संख्या 180 से बढ़ाकर 807 कर दी गई। बड़े उद्योगों को प्रदूषण नियंत्रण की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए कहा गया। छोटे पैमाने और लघु उद्योगों के विस्तृत फैलाव और कृषि क्षेत्र को मजबूती प्रदान करने के उद्देश्य रखे गये। बड़े और एकाधिकार व्यावसायिक घरानों को लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित क्षेत्रों में जाने की आज्ञा नहीं थी। सार्वजनिक क्षेत्र की पूरे औद्योगिक क्षेत्र के विकास की भूमिका को बरकरार रखा गया। विदेशी पूँजी और ऊर्जा पर निर्भरता घटानी थी। लेकिन कुछ देशों की बहु-राष्ट्रीय कंपनियों को हटकर अनुमति भी दी गई।

नीति में तकनीकी आत्मनिर्भरता पर बल दिया गया। अतः जटिल और ऊँची प्राथमिकता वाले उन क्षेत्रों में जहाँ घरेलू प्रौद्योगिकी उन्नत नहीं थी, बाहर से प्रौद्योगिकी का आना जारी रखा गया।

नीति में रुग्ण इकाइयों के प्रति गुण-दोष के आधार पर दृष्टिकोण रखा गया। कहा गया कि हालाँकि वर्तमान रोजगार स्तर को बनाये रखने की जिम्मेदारी सरकार की है, लेकिन ऐसा करने की लागत को भी ध्यान में रखा जाएगा। सरकार द्वारा ली गई बहुत सी बीमार इकाइयों में बहुत सा पैसा लगा दिया गया लेकिन फिर भी वे नुकसान दिखा रही थी। यह नुकसान फिर सरकारी खजाने को भरना पड़ता। ऐसा निरंतर नहीं चलेगा।

लेकिन केंद्र में सरकार केवल कुछ वर्ष ही रहने के कारण इस क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। जबकि शुरू हुई घरेलू उदारीकरण की नीति 1980 में सरकार बदलने के साथ-साथ भी निरंतर चलती रही।

17.6.3 1980 की औद्योगिक नीति

यह नीति 1956 के ही औद्योगिक नीति प्रस्ताव पर आधारित थी। इस नीति में कहा गया कि छोटे और बड़े उद्योगों के बीच परस्पर विरोध का बनावटी भेद समाप्त करने के लिए कुछ चुने हुए औद्योगिक तौर पर पिछड़े जिलों में कुछ केंद्रक संयंत्र (nucleus plants) स्थापित कर आर्थिक संघवाद (Economic Federalism) की अवधारणा को बढ़ावा दिया जाएगा। यह भी तय किया गया कि ये केंद्रक संयंत्र इनके कार्यक्षेत्र में पड़ने वाले सहायक उद्योगों के उत्पादों के संयोजन का काम करेंगे। ये छोटी इकाइयों की प्रौद्योगिकी में भी सुधार लाएँगे। सरकार बड़े केंद्रक-संयंत्रों तथा इसके अधीन सहायक उद्योगों के बीच संबंध बढ़ाने की कोई प्रणाली बनाएगी।

लघु उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए लघु एवं अत्यंत लघु (tiny) इकाइयों की निवेश सीमा बढ़ा दी गई। राज्यों में लघु उद्योग विकास निगमों तथा केंद्र में राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के माध्यम से छोटे उद्योगों के लिए कच्चे माल का सुरक्षित भंडार रखने की एक योजना चालू की गई।

वर्तमान औद्योगिक क्षमताओं का पूर्ण उपयोग सुनिश्चित करने के लिए, विशेषतया महत्त्वपूर्ण उद्योगों और निर्यात संभावना वाले उद्योगों को तुरंत क्षमता विस्तार की सुविधा दी गई। शत-प्रतिशत निर्यात करने वाली इकाइयों की स्थापना और वर्तमान इकाइयों में विस्तार के लिए आवेदनों पर सहानुभूति से विचार किया गया।

17.6.4 उदारीकरण उपाय, 1985

भौतिक नियंत्रणों से वित्तीय नियंत्रणों की ओर जाने के सिद्धांतों की जाँच करने वाली एक समिति की 1985 में प्रकाशित रिपोर्ट ने सुधारों की गति को तेज करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। नीतिगत उपाय किए गए जिनमें प्रमुख ये थे :

i) कई उद्योगों का लायसेंसीकरण समाप्त करना;

ii) उत्पादों की संख्या में लचीलापन लाने के लिए कुछ उद्योगों का एक समूह बनाना (broad-banding);

iii) उद्योगों की सूची बढ़ाकर बड़े घरानों की भूमिका बढ़ाना;

iv) एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम (MRTP) के अंतर्गत आने वाले घरानों की परिसम्पत्तियों की सीमा 100 करोड़ रुपये करना ताकि बड़ी संख्या में कंपनियाँ इसके दायरे से बाहर रहकर अपना काम कर सकें।

v) लघु क्षेत्र की निवेश सीमाएँ बढ़ाना और उन्हें वित्तीय प्रोत्साहन देना।

vi) आधुनिकीकरण/नवीकरण/प्रतिस्थापन के उद्देश्य से लायसेंस क्षमता की 49 प्रतिशत तक लायसेंसीकरण से मुक्ति;

vii) विशिष्ट उद्योगों के लिए राष्ट्रीय नीतियों की घोषणा करना, जैसे कपड़ा, चीनी, इलैक्ट्रोनिक्स, तथा कम्प्यूटर;

viii) आधुनिकीकरण और गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विदेशी प्रौद्योगिकी के आयात को आसान बनाना;

ix) कुछ उद्योगों में वर्तमान उपक्रमों को परिचालन के न्यूनतम आर्थिक स्तर प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन देना।

जून 3, 1988 को औद्योगिक लायसेंसीकरण में और उदारीकरण की घोषणा की गयी। इसमें वे कंपनियाँ जो MRTP व विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम के अधीन नहीं आती, उनके लायसेंस प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं। सरकार ने पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए देश भर में 100 विकास केंद्र खोले। पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों को आयकर में छूट जैसे प्रोत्साहन दिए गए।

बोध प्रश्न 2

1) खाली स्थान भरिए :

i) 1948 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में मुख्य बल .....अर्थव्यवस्था की आधारशिला रखने पर दिया गया। (समाजवादी, मिश्रित)

ii) 1977 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव ने ..... की भूमिका को प्रबल बनाया।

(लघु क्षेत्र, बड़े घराने)

iii) .....के औद्योगिक नीति प्रस्ताव ने लघु उद्योगों को कुछ महत्व प्रदान किया। (1948, 1956)

2) विनिर्माण में सरकार द्वारा अपनाए गए विभिन्न नियंत्रणों के नाम बताइए।

.....

.....

.....

3) 1985 में उदारीकरण के प्रति क्या नीतिगत उपाय लिए गये थे ? कोई से तीन बताइए।

.....

.....

.....

17.7 नई औद्योगिक नीति, 1991

यह नीति मुख्यतः उद्योगों के विनियमन में ढील देने के लिए बनाई गई थी। इसके मुख्य उद्देश्य थे : (i) अब तक की प्राप्तियों को आगे बढ़ाना, (ii) कमियों को दूर करना, (iii) उत्पादिता और रोजगार में दीर्घकालीन वृद्धि लाना, और (iv) अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता स्तर प्राप्त करना। इन सब के लिए प्रेरणा वातावरण बनाए रखने और उपलब्ध साधनों का कुशल प्रयोग सुनिश्चित करने की आवश्यकता से मिली थी।

उपरोक्त उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सरकार ने निम्नलिखित क्षेत्रों के बारे में नई नीतियाँ बनाई : (i) औद्योगिक लायसेंसीकरण, (ii) विदेशी निवेश, (iii) विदेशी प्रौद्योगिकी समझौते, (iv) सार्वजनिक क्षेत्र नीति, (v) MRTP अधिनियम।

17.7.1 औद्योगिक लायसेंसीकरण

कुछ निर्दिष्ट उद्योगों को छोड़ शेष सभी उद्योगों में लायसेंसीकरण समाप्त कर दिया गया चाहे निवेश की मात्रा कितनी भी हो। ये निर्दिष्ट उद्योग सुरक्षा, वातावरण, खतरनाक प्रकृति के उत्पाद, विशिष्ट वर्ग के उपभोग की वस्तुओं से संबंधित है। लायसेंसीकरण समाप्त करना छोटे और मध्यम उद्यमियों के लिए बड़ा सहायक रहा। 14 अगस्त 1993 को अनिवार्य लाइसेंसीकरण की 18 मदों में से 3 पर लाइसेंसीकरण समाप्त कर दिया गया। ये थे : मोटर कार, सफेद वस्तुएँ (जैसे फ्रिज, वाशिंग मशीन, एयर कंडीशनर) तथा कच्ची खाले व चमड़ा और तैयार चमड़ा। 1997-98 में यह संख्या 14 से घटाकर 9 कर दी गई। चीनी में लाइसेंसीकरण उदार करने से यह संख्या 8 तक पहुँच गई। ये उत्पाद हैं : कोयला, खनिज तेल, मदिरा, तम्बाकू, रक्षा, विस्फोटक, हानिकारक रसायनिक पदार्थ तथा दवाइयाँ।

10 लाख आबादी वाले शहरों को छोड़कर किसी भी अन्य स्थान पर अनिवार्य लाइसेंसीकरण उद्योगों को छोड़ किसी भी अन्य स्थान पर उद्योग खोलने के लिए केंद्रीय सरकार की अनुमति की आवश्यकता नहीं होगी। 10 लाख से अधिक आबादी वाले शहरों के संदर्भ में, वातावरण दूषित न करने वाले उद्योगों (जैसे इलैक्ट्रोनिक्स, कंप्यूटर साफ्टवेयर, छपाई) को छोड़ बाकी सभी उद्योग, शहर की परिधि से 25 किलोमीटर बाहर स्थापित किए जाएँगे।

चरणबद्ध विनिर्माण कार्यक्रमों की प्रणाली नयी परियोजनाओं में लागू नहीं होगी। वर्तमान परियोजनाओं में यह लागू रहेगी। वर्तमान इकाइयों को विस्तृत समूह सुविधा भी मिलेगी ताकि वे कोई भी वस्तु का बिना किसी निवेश के उत्पादन कर सकें। सभी वर्तमान इकाइयों के विस्तार को लाइसेंसीकरण से छूट मिलेगी।

वित्तीय संस्थाओं से प्राप्त मियादी ऋणों अनिवार्य परिवर्तनीयता खंड (mandatory convertibility clause) अब लागू नहीं होगी।

17.7.2 विदेशी निवेश

विदेशी निवेश के बारे में मुख्य बातें ये थीं : (i) ऊँची प्राथमिकता वाले उद्योगों में विदेशी निवेश के रूप 51 प्रतिशत शेयर पूँजी तक की आज्ञा दे दी जाएगी; (ii) अंतरराष्ट्रीय बाजारों तक पहुँचने के लिए निर्यात में लगी कंपनियों 51 प्रतिशत तक विदेशी शेयर पूँजी की आज्ञा दे दी जाएगी; (iii) एक विशेष अधिकार प्राप्त बोर्ड की स्थापना होगी जो अंतरराष्ट्रीय फर्मों से बातचीत करेगा और चुने हुए क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का अनुमोदन करेगा।

17.7.3 विदेशी प्रौद्योगिकी समझौते

यह तय किया गया कि ऊँची प्राथमिकता वाले उद्योगों के साथ ऐसे विदेशी समझौतों को जिनमें एक करोड़ रुपये तक एकमुश्त भुगतान होना है, तुरंत मंजूरी मिल जाएगी। इनमें रॉयल्टी भुगतान बिक्री का 5 प्रतिशत और निर्यात में 8 प्रतिशत बशर्ते कि समझौते से दस वर्ष की अवधि में या उत्पादन प्रारंभ करने के सात वर्ष की अवधि में बिक्री का 8 प्रतिशत से अधिक न हो। विदेशी तकनीशियनों के सेवाएँ प्राप्त करने, देश में विकसित प्रौद्योगिकी का विदेशी परीक्षण करवाने हेतु किसी आज्ञा की आवश्यकता नहीं होगी।

17.7.4 सार्वजनिक क्षेत्र

1956 के प्रस्ताव में सार्वजनिक क्षेत्र को महत्त्वपूर्ण भूमिका दी गई है। इस क्षेत्र में पिछले चार दशकों में भारी निवेश किया गया। सार्वजनिक उपक्रमों में अब बहुत सी समस्याएँ पैदा हो गई हैं; जैसे कि उत्पादिता में कम वृद्धि, खराब परियोजना प्रबंधन, प्रौद्योगिकी सुधार में निरंतरता का अभाव, आवश्यकता से अधिक कर्मचारी, अनुसंधान और विकास, और मानव संसाधन विकास पर कम ध्यान। परिणामस्वरूप, बहुत से सार्वजनिक उपक्रम सरकार के लिए भार बन गए हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की मूल अवधारणा भी काफी बदल गई है। अतः, सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों की ओर एक नया दृष्टिकोण अपनाया है। भविष्य में सार्वजनिक उपक्रमों के प्राथमिकता वाले क्षेत्र ये होंगे :

- आवश्यक बुनियादी सुविधाएँ और सेवाएँ।
- तेल व खनिज संसाधनों की खोज व शोषण।
- उन क्षेत्रों में जहाँ दीर्घकालीन विकास महत्वपूर्ण है और जिनमें निजी निवेश नहीं आता है, प्रौद्योगिकी विकास तथा विनिर्माण क्षमताओं का निर्माण।
- सामरिक महत्त्व के उत्पाद, जैसे रक्षा-सामग्री।

साथ-साथ यह भी है जो क्षेत्र इसके लिए आरक्षित नहीं है उनमें सार्वजनिक क्षेत्र को प्रवेश करने की मनाही नहीं है। सरकार सार्वजनिक निवेश की सूची का अधिक वास्तविकता से समीक्षा करेगी। यह समीक्षा इनके बारे में होगी : नीची प्रौद्योगिकी पर आधारित उद्योग, लघु पैमाने के और ग़ैर-सामरिक महत्त्व के क्षेत्र, अकुशल और अनुत्पादक क्षेत्र, वे क्षेत्र जिनमें सामाजिक या सार्वजनिक उद्देश्य न हों और वे क्षेत्र जिनमें निजी क्षेत्र ने काफी निपुणता और संसाधन प्राप्त कर लिए हैं। बीमार इकाइयों के पुनर्वास के लिए इन्हें औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (BIFR) को या फिर ऐसी किसी और संस्था को सौंपा जाएगा।

इकाइयों के पुनर्वास से प्रभावित मजदूरों के हितों की सुरक्षा के लिए सामाजिक सुरक्षा

प्रक्रिया बनायी जाएगी। साधन जुटाने और जनता की भागीदारी को प्रोत्साहन देने हेतू सार्वजनिक क्षेत्र में सरकार के पास शेयरों का एक भाग म्युचुअल फंड, वित्तीय संस्थाओं, सामान्य सार्वजनिक कर्मचारियों को बेचा जाएगा। प्रदर्शन में सुधार समझौते के ज्ञापन (Memorandum of Understanding) द्वारा होगी जिसके प्रबंध को अधिक स्वायतत्ता दी जाएगी और वह जबावदेह होगा। यह समझौता ज्ञापन संसद में पेश होगी और इस पर बहस होगी। इससे सार्वजनिक उद्यमों की कार्य प्रणाली सुधरेगी। सार्वजनिक क्षेत्र में अब 8 उद्योगों का आरक्षण है, जैसे कि हथियार और गोला बारूद, एटमी ऊर्जा, कोयला व लिगनाइट, खनिज तेल, रेलवे परिवहन आदि।

17.7.5 MRTP अधिनियम

जहाँ तक MRTP का संबंध हैं, MRTP कंपनियों की अब आवश्यकता नहीं होगी। जोर इस बात पर होगा कि एकाधिकारी, प्रतिबंधी व अनुचित व्यापार कार्यों को कैसे रोका जाए, न कि इस बात पर कि एकाधिकारी घराने विस्तार करने, नए उपक्रम खोलने, विलय करने, समामेलन करने, अधिकार में लेने, या निदेशकों की नियुक्ति करने में केंद्रीय सरकार की आज्ञा लें। शेयर प्राप्त करने, हस्तांतरण करने के प्रतिबंधों के बारे में कंपनी एक्ट में प्रावधान किए जाएँगे। MRTP अधिनियम में व्यवस्थाओं को मजबूत बनाया जाएगा ताकि MRTP आयोग एकाधिकारी, प्रतिबंधी व अनुचित व्यापार कार्यों के विरुद्ध उचित कार्यवाही कर सकें। नया MRTP आयोग अब व्यक्तिगत उपभोक्ता या उपभोक्ता वर्गों की शिकायत पर भी कार्यवाही करेगा।

17.8 नई औद्योगिक नीति की समीक्षा

नई औद्योगिक नीति ने उद्योग की लंबे समय से चली आ रही माँग को पूरा किया है। 8 उद्योगों को छोड़ कर शेष सभी उद्योगों में लाइसेंसीकरण समाप्त कर दिया गया। MRTP कंपनियों और बड़े उपक्रमों की परिसंपत्तियों की सीमा समाप्त कर दी गई। अब ये कंपनियाँ नए उपक्रम लगा सकती हैं; विस्तार कर सकती हैं, विलय, समामेलन कर सकती है, अधिकार में ले सकती है। इसके लिए अब इन्हें सरकार से आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं। MRTP आयोग से भी आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं। इससे अफसरशाही के कारण आने वाली रुकावटें समाप्त हो गई हैं। इस नीति का स्वागत होना चाहिए क्योंकि इसने 'लाइसेंस-परमिटराज' को समाप्त किया है, और उद्यमियों को अफसरशाही से बचाया है। अब कंपनियों को निदेशकों की नियुक्ति करने का भी अधिकार है। अन्य शब्दों में, नई नीति ने बहुत से ऐसे प्रावधानों को समाप्त कर दिया है जो निजी निगमित क्षेत्र के विकास में रुकावट थे। इससे अर्थव्यवस्था में निजीकरण को भी बढ़ावा मिला है। व्यावसायिक हल्कों में इन सभी प्रावधानों का स्वागत हुआ है। लाइसेंसीकरण और नियंत्रणों से एक राहत की साँस है।

लेकिन, कुछ क्षेत्रों में नई नीति की आलोचना भी हुई है। यह नीति इस विश्वास पर अपनाई गई है कि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश भारत के आर्थिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। लेकिन विदेशी पूँजी का स्वागत करने के उत्साह में डर इस बात का है कि हम अपनी प्रभुसत्ता बहु-राष्ट्रीय कंपनियों को न बेच दे।

आलोचकों का डर पिछले अनुभवों पर आधारित है। विदेशी पूँजी को खुला छोड़ देने पर ऊँची प्राथमिकता वाले और नीची प्राथमिकता वाले उद्योगों में भेद समाप्त हो जाएगा। इसमें एक छिपी बात यह भी है कि आगे आने वाले वर्षों में विदेशी कोश भारत से बाहर जाना प्रारंभ हो जाएगा। हमारे ऊपर विदेशी ऋण भार पहले ही बहुत है। अतः इस बात का ध्यान

रखना आवश्यक है कि विदेशी पूँजी केवल ऊँची प्राथमिकता वाले उद्योगों में ही आए।

नई नीति मे निवेशित पूँजी के प्रतिफल की नीची दर पर भी ध्यान दिलाया गया है। फलस्वरूप, बहुत से सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम सरकार पर भार हो गए हैं। इसका प्रभावशाली उदाहरण है निजी क्षेत्र की बीमार इकाइयों को सरकार द्वारा अपने अधिकार में लेना। उद्योगों का यह वर्ग केंद्रीय सार्वजनिक उद्यमों की कुल हानि का एक-तिहाई भाग के लिए जिम्मेदार है। सरकार को प्रतिदेय और लाभ कमाने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों पर ध्यान देना चाहिए। सरकार ऐसा समझौते के ज्ञापन के माध्यम से करना चाहती है। इनमें निजी क्षेत्र को भागीदार बनाकर इनको प्रतियोगी भी बनाना चाहती है। यह इनमें विनिवेश (disinvestment) भी करना चाहती है। ऐसा वह इनके शेयर वित्तीय कंपनियों और यहाँ तक कि कर्मचारियों को बेचकर करना चाहती है।

बोध प्रश्न 3

1) वे कौन से प्रमुख क्षेत्र हैं जिसमें 1991 की औद्योगिक नीति वक्तव्य में नीतिगत पहल की गई है। (एक वाक्य में उत्तर दीजिए।)

....

....

2) सही पर (✓) और गलत पर (×) का निशान लगाइए।

   i) नई औद्योगिक नीति में विदेशी तकनीशियनों की सेवाएँ नहीं प्राप्त की जा सकती। ( )

   ii) नई औद्योगिक नीति का उद्देश्य भारतीय उद्योग की स्पर्धा व कुशलता बढ़ाना है। ( )

   iii) पारम्परिक तौर पर विदेशी निवेश नीति ने होटलों को छोड़कर सेवा क्षेत्र में विदेशी शेयर निवेश को प्रोत्साहित किया है। ( )

   iv) 1993 के बाद से अनिवार्य लाइसेंसीकरण उद्योगों की संख्या 18 है। ( )

3) नई औद्योगिक नीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

....

....

....

17.9 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् हमने जाना कि भारत में उदारीकरण की प्रक्रिया निरंतर चल रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत का औद्योगिक क्षेत्र मुख्यतः उपभोक्ता वस्तुओं पर आधारित था। बुनियादी सुविधाओं की कमी थी। बचत व निवेश काफी नहीं था। आजादी के बाद भारत को इन कमियों को दूर करने का और औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के लिए वातावरण बनाने का मौका मिला। लेकिन, आर्थिक विकास की ऋणनीति क्या हो? इस पर देश में एक बहस छिड़ी। गाँधी ने लघु उद्योगों और आत्मनिर्भरता का समर्थन किया। नेहरू और उसके जैसे सामाजिक लोकतंत्रवादियों ने पूंजीगत वस्तुओं के उद्योगों के माध्यम से तेजी से औद्योगीकरण का पक्ष लिया। सरकार ने औद्योगिक विकास के लिए आयोजन

का रास्ता चुना। ऋणनीति को विभिन्न औद्योगिक नीति प्रस्तावों के माध्यम से लागू किया गया।

प्रथम प्रस्ताव 1948 में पारित हुआ। इसके बाद 1956, 1973, 1975, 1980 व 1991 में प्रस्ताव पारित हुए। इन सभी में मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा को अपनाया गया। सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच भेद लाइसेंसीकरण के माध्यम से किया गया। महत्त्वपूर्ण उद्योगों पर सरकार का नियंत्रण था।

1970 के दशक में पारित प्रस्तावों में लाइसेंसीकरण और नियंत्रणों में ढील दी गई। 1977 में सरकार बदलने पर औद्योगिक नीतियों की समीक्षा की गई और लघु तथा कुटीर उद्योगों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। बाद में भौतिक नियंत्रण से वित्तीय नियंत्रण की ओर बदलाव आया और अधिक उदारीकरण लाया गया।

1991 की नई नीति में अर्थव्यवस्था में अविनियमन (deregulation) तेजी से लाया गया। न केवल घरेलू क्षेत्र में सुधार लाए गए बल्कि विदेशी निवेशकों व प्रौद्योगिकी की आपूर्ति करने वालों के साथ गतिशील संबंध बनाए गए। इसके इलावा, औद्योगिक लाइसेंसीकरण समाप्त हुआ, चरणबद्ध विनिर्माण कार्यक्रम समाप्त हुए, MRTP अधिनियम में परिवर्तन लाए गए। इस तरह 1991 की नीति ने सरकार की भूमिका में परिवर्तन ला दिया। अब सरकार प्रमुख निवेशक न होकर साहस को बढ़ावा दे रही है जिससे निजीकरण और उदारीकरण का रास्ता खुल रहा है।

17.10 शब्दावली

मुख्य (Core) क्षेत्र : राष्ट्रीय आर्थिक विकास के आधारभूत उद्योग जिसमें कोयला व लिगनाइट, कच्चा तेल, पैट्रोलियम व प्राकृतिक गैस, बिजली, उर्वरक, पैट्रो-रसायन आदि।

भौतिक नियंत्रण : भौतिक नियंत्रण औद्योगिक लाइसेंसीकरण के रूप में होते है, जैसे क्षमता, ऋण, आयात, कोटा, स्थानीकरण, आदि के लिए परमिट। वितरण और कीमत पर नियंत्रण भी इसमें शामिल हैं।

आयात प्रतिस्थापन : इसका अर्थ है आयातित वस्तुओं के प्रतिस्थापनों का देश के भीतर उत्पादन करना, ताकि आयात पर निर्भरता कम हो सकें।

17.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Ahluwalia, I.J. (1985) *Industrial Growth in India*, Oxford University Press (Ch.6 & 8)

Bhagwati, J.N. and Desai, P. (1970) *India : Planning for Industrialisation*, Oxford University Press (Chs. 12-16)

Bhagwati, J.N. and Srinivasan, T.N. (1975) *Foreign Trade Regime and Economic Development in India*, Columbia University Press.

Chaudhary, P. (1979) *The Indian Economy : Poverty and Development*, Vikas Pubishing House, New Delhi (Ch.6)

Chellaswami, T., "Policy Relating to Small Scale Sector" in Mongia, J.N. (ed.) (1980), *India's Economic Policies*, 1947-77, Allied Publishers, New Delhi.

Dutt R. and Sundhram, K. P.M. (2002) *Indian Economy*, S. Chand and Company, New Delhi.

Rangnekar, D.K. "Industrial Policy" in Mongia J.N. (ed.) (1980) *India's Economic Policies*, 1947-77, Allied Publishers, New Delhi.

Tandon B.B. and Tondon (1997), *Indian Economy*, Tata McGraw Hill, New Delhi. (Ch.18).

Govt. of India, *Economic Survey*, 1997.

Government of India, *Statement of Industrial Policy*, July, 24, 1991, Ministry of Industry, New Delhi.

17.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (i) गलत, (ii) सही, (iii) गलत, (iv) सही
2) पढ़िए भाग 17.2
3) पढ़िए उपभाग 17.2.2

बोध प्रश्न 2

1) (i) समाजवादी, (ii) बड़े घराने, (iii) 1956
2) पढ़िए उपभाग 17.5.2
3) पढ़िए उपभाग 17.6.4

बोध प्रश्न 3

1) पढ़िए उपभाग 17.7
2) (i) गलत, (ii) सही, (iii) गलत, (iv) गलत
3) पढ़िए उपभाग 17.8